इकाई 11 अनुदेशात्मक कार्य-नीतियाँ

संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 अनुदेशात्मक कार्य-नीति क्या है ?

11.4 अनुदेशात्मक कार्य-नीति का विकास करना

- 11.4.1 अध्यापक को क्या पढ़ाना है ?
- 11.4.2 शैक्षिक उद्देश्य के बौद्धिक योग्यता आयामों का विवेचन
- 11.4.3 विशिष्टियों/विनिर्देशन की तालिका बनाना
- 11.4.4 प्राथमिकताओं को नियत करना
- 11.4.5 व्यवहारगत रूप में शिक्षण के उद्देश्यों का विशेषीकरण
- 11.4.6 समय-सीमा का निर्धारण
- 11.4.7 सर्वोपयुक्त शिक्षण-विधियों का चुनाव

11.5 सर्वोपयुक्त अनुदेशात्मक कार्य-नीति का निर्धारण करना

- 11.5.1 अनुभव शंकु
- 11.5.2 संप्रेषण प्रणाली

11.6 अनुदेशात्मक कार्य-नीति का विकास - कुछ प्राचल (पैरामीटर)

11.7 पूर्व-परीक्षण एवं प्रमाणीकरण

11.8 सारांश

11.9 अभ्यास कार्य

11.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व अनुदेशी योजना इकाई में आप अनुदेशन की अवधारणा, आवश्यकता उसके महत्व के अतिरिक्त अनुदेश से सम्बन्धित समस्याओं तथा उनके उपायों का अध्ययन कर चुके हैं।

प्रस्तुत इकाई में "कार्य-नीति" की अवधारणा को सामान्य रूप से स्पष्ट किया जायेगा। तत्पश्चात् अनुदेशात्मक / अध्यापन-अधिगम के संदर्भ में उसको समझाया जायेगा। अध्यापक के सम्मुख ऐसे दो प्रश्न होते हैं जिनका उसे समाधान करना होता है :-

- अध्यापक किस उद्देश्य को लेकर अध्यापन कार्य करता है ?
- वह किस प्रकार से अध्यापन कार्य करता है।

आइये देखें कि पहले प्रश्न का संकेत किस ओर है ?

- अध्यापक द्वारा , अपेक्षित अनुदेश के उद्देश्य अथवा अनुदेशात्मक निष्पत्तियां निर्धारित किए गए हैं।
- विषय-सामग्री, पाठ्यक्रम और शिक्षण बिन्दु क्या-क्या हैं ? इन बिन्दुओं का क्रियान्वयन 'कैसे' (किस प्रकार) होगा?

- अध्यापक, अपने अध्यापन के लिये कौन सी विधि का उपयोग करेगा?
- पढ़ाते समय कौन सा माध्यम, अथवा उनके किस संयोजित स्वरूप का प्रयोग किया जायेगा?

संदेश देने के लिये उपलब्ध, उपयोगी विधियों और माध्यम के उपयुक्त संयोजन के प्रयोग के अतिरिक्त, क्रियान्वयन के लिये प्रयुक्त 'किस प्रकार' अथवा 'कैसे' शब्द के अन्य महत्त्वपूर्ण संकेतों का अर्थ है —

एक अध्यापक द्वारा अपने विद्यार्थियों को दिये जाने वाले अनुदेश का प्रभावपूर्ण होने का अर्थ यह है कि उसके द्वारा दी जाने वाली शिक्षण सामग्री को उसके विद्यार्थी कहाँ तक ग्रहण कर सके हैं अथवा सीख सकें हैं। इस प्रकार अध्यापक के अनुदेश के समय 'मूल्यांकन' का प्रश्न स्वतः सम्मलित रहता है। एक अध्यापक यह मूल्यांकन कैसे कर सकता है ? अथवा वह यह किस प्रकार पता लगा सकता है कि उसका विद्यार्थी, अनुदेशात्मक सामग्री को कैसे और कितना ग्रहण कर रहा है ? — अध्यापक के अनुदेश के समय ये प्रश्न महत्त्वपूर्ण होते हैं।

इन प्रश्नों का उत्तर समुचित और क्रमिक रूप से मिल सके, इसके लिये अनुदेशात्मक प्रक्रिया में समुचित कार्य नीतियों की आवश्यकता पड़ती है। इस इकाई में उन आधारभूत सोपानों का अध्ययन किया जायेगा, जो प्रभावपूर्ण अनुदेशात्मक कार्य-नीति की रचना में सहायक है।

यह इकाई, इंदिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय के उच्च शिक्षा के लिये "स्नातकोत्तर - डिप्लोमा" की योजना में (पी.जी.डी.एच.ई.) बने पाठ्यक्रम ई. एस. 302 (खंड -1, इकाई-4) में कुछ परिष्कार के साथ प्रस्तुत की गई है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएगे कि:

- **'अनुदेशात्मक कार्य-नीति' को परिभाषित कर सकेंगे;**
- **प्रस्तावित पाठ्यक्रम के लिये, अनुदेशात्मक लक्ष्यों का निर्माण कर सकेंगे;**
- **विशेष लक्ष्यों की प्राप्ति के लिय उपयुक्त विधियों तथा माध्यमों का चुनाव कर सकेंगे;**
- **अनुदेशात्मक कार्य-नीति सम्बन्धी बिन्दुओं को सूचीबद्ध कर सकेंगे;**
- अनुदेशात्मक प्रक्रिया में मूल्यांकन के महत्व पर चर्चा कर सकेंगे;
- अध्यापन के लिये अनुदेशात्मक कार्य-नीति का विकास कर सकेंगे।

11.3 अनुदेशात्मक कार्य-नीति क्या है ?

हम सभी कार्य-नीति या रणनीति शब्द से भली-भांति परिचित हैं। इस शब्द का प्रयोग, प्रायः सैनिक कार्यवाही के लिये किया जाता है। इसका साधारण अर्थ, उस योजना के निर्माण से है जिसके द्वारा, विशेष लक्ष्य अथवा परिणामों को प्राप्त किया जा सके। इसी अर्थ-बोध के साथ जब, इस शब्द का प्रयोग पढ़ने-पढ़ाने की अनुदेशात्मक अवस्था में किया जाता है, तो उसे अनुदेशात्मक कार्य-नीति के रूप में समझना चाहिये। अनुदेशात्मक कार्य-नीति में निहित कुछ प्रमुख घटकों को लिखने का प्रयास कीजिए -

1.

2.

3.

4.

इस पाठ्यक्रम की इकाई-5, खण्ड-2 में आपने अनुदेशात्मक व्यवस्था के प्रमुख अंशों का अध्ययन किया है। नीचे दी गई चित्र 11.1 के द्वारा, अनुदेशात्मक व्यवस्था का एक बिन्दु आलेखी प्रतिरूपण प्रस्तुत है —

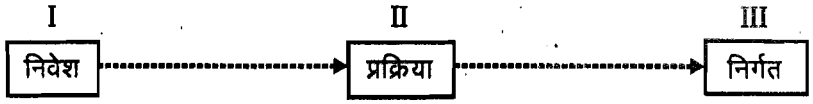

चित्र 11.1: अनुदेशात्मक व्यवस्था — प्रमुख घटक

इस प्रकार अनुदेशात्मक व्यवस्था के तीन प्रमुख घटक हैं। तीसरे घटक 'निर्गत' (प्राप्त परिणामों) को इन अर्थों में भी समझा जाना चाहियेः-

- अधिगम निष्पत्तियां
- अनुदेशात्मक परिणाम
- अन्तिम सत्रांत व्यवहार (विद्यार्थी के सम्बन्ध में)
- शिक्षा के लक्ष्य
- व्यवहारगत-उद्देश्य

आप इसमें यदि कुछ और जोड़ना चाहते हैं, तो कृपया नीचे खाली स्थान पर लिखें

.....

.....

.....

इसी प्रकार दूसरा घटक 'प्रक्रिया' को इस प्रकार समझना चाहिये

- सीखने के अनुभव
- अनुदेशात्मक घटनायें
- अध्यापन तथा सीखने की प्रक्रिया
- सीखने की अवस्थाओं का क्रम निर्धारण
- अध्यापन

विभिन्न पृष्ठभूमि के व्यक्ति तथा विभिन्न वैज्ञानिक, अनुदेशात्मक प्रक्रिया के पक्षों को समझाने के लिये पृथक-पृथक शब्दावलियों का प्रयोग करते हैं। कुल मिलाकर महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अनुदेशात्मक प्रक्रिया की रचना इस प्रकार होनी चाहिये जिसकी रूपरेखा स्पष्ट हो, निर्विवाद रूप से प्रभावशाली हो, तथा जो एक व्यवस्थित ढ़ंग से अथवा तदर्थ रूप से, शिक्षार्थी को इन बातों में सहायता करती होः-

- शिक्षण के लक्ष्यों की प्राप्ति में
- सीखने के समय सत्रांत/अन्तिम व्यवहारों तक पहुँचना।

अनुदेशात्मक कार्य-नीति के लिये शिक्षण उद्देश्यों, शिक्षण स्तर, छात्रों की क्षमता, उनमें होने वाली अपेक्षित प्रगति, अनुभवों, उपलब्धियों आदि सभी पक्षों को ध्यान में रखते हुए, उसका निर्माण किया जाना चाहिए। इसके लिए अध्ययन अथवा अनुदेश की सुस्पष्ट, सुनिश्चित व्यवस्था की आवश्यकता पड़ती है।

कोई भी व्यक्ति पुस्तक पढ़कर अथवा फिल्म देखकर, तैरना नहीं सीख लेता। तैरना सीखने के लिये, उसे पानी में प्रवेश करना होगा (ध्यान रहे - एक गहराई तक ही, इतना गहरा नहीं कि डूब ही जाए।) और तब तैरने का प्रयास करना होगा। अनुदेशात्मक कार्य-नीति की रूपरेखा तैयार करने के लिए, ठीक इसी प्रकार के अनुभवगत प्रयासों की आवश्यकता पड़ती है। अध्यापक , एक सुनिश्चित रूपरेखा तैयार कर सके, दृष्टि से एक अभ्यास-योजना प्रस्तुत की गई है। जो भी विषय अध्यापक पढ़ाता है, वह उसमें से किसी एक इकाई का चुनाव कर ले। उसे इकाई के उन प्रत्येक क्रमों का विधिपूर्वक अध्ययन करना होगा जिनका सम्बन्ध अनुदेशात्मक व्यवस्था से है। प्रत्येक का क्रमबद्ध ढंग से अनुसरण करे। अध्यापक इस कार्य में पर्याप्त समय ले सकता है। यह सम्पूर्ण कार्य एक प्रयास में पूरा नहीं किया जा सकता। पहले प्रयास में सम्पूर्ण इकाई का गहनता से अध्ययन करना होगा। तदुपरान्त अनुदेशात्मक व्यवस्था के आधार पर सम्बन्धित कार्य का प्रारम्भ करना होगा। जब तक यह कार्य समाप्त नहीं होता, क्रमिक रूप से आगे बढ़ते हुए कार्य में जुटे रहें।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान पर अपने उत्तर लिखिए।

ख) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से कीजिए।

1. शिक्षक की अध्यापन प्रक्रिया में, अनुदेशात्मक कार्य नीति की रचना किस प्रकार से सहायक है ? संक्षेप में समझाइए।

.....

.....

.....

.....

11.4 अनुदेशात्मक कार्य-नीति का विकास करना

अनुदेशात्मक कार्य-नीति की रचना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें अनेक क्रमों की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रक्रिया में निहित होने वाले क्रमों का आलेखी प्रतिरूपण के साथ चित्र 11.2 में प्रस्तुत किया जा रहा है। इसके साथ ही नीचे उन पर विवेचन भी किया जाएगा।

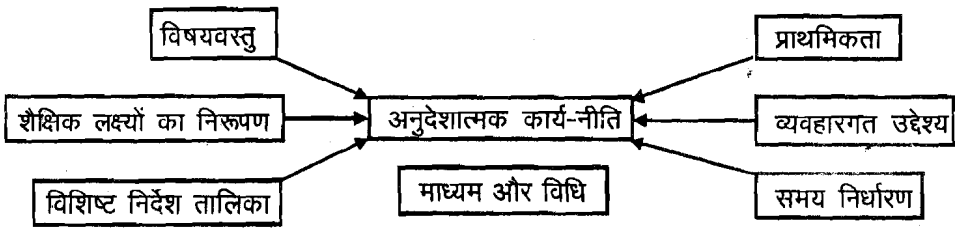

चित्र 11.2: अनुदेशात्मक कार्य-नीति विकास के पक्ष

11.4.1 अध्यापक को क्या पढ़ाना है ?

कक्षा में एक अध्यापक को क्या पढ़ाना है ? किसी भी पाठ्यक्रम में विषय-वस्तु और उपविषय आदि निश्चित होते हैं। वस्तुतः पाठ्य-सामग्री में, उप-विषय, नियम उन्हें पढ़ाने के तरीके आदि का भी उल्लेख होता है। पाठ्य-पुस्तकों के गहन विवेचन में एक स्तर तक विषय-प्रतिपादन के संकेत भी दिए होते हैं। समान्यतः, प्रचलित शिक्षा के सर्वमान्य उद्देश्य, चिन्तन, विश्लेषणात्मक तर्क, उन्मुक्त अथवा असंदिग्ध बुद्धिपरकता, वैज्ञानिक-वृति जैसी अवधारणाओं के माध्यम से विषयवस्तु को स्पष्ट करने का प्रयास किया जाता है। विषयवस्तु का निरूपण किस स्तर तक करना चाहिये यह तथ्य भी निर्देशित रहता है। किन्तु प्रायः अनेक अवसरों पर विशिष्ट संज्ञानात्मक योग्यताओं अथवा प्रभावशाली लक्षणों के सम्बन्ध में बहुत अधिक भ्रम भी रहता है। इसीलिये एक अध्यापक को पाठ्यक्रम के किसी उप-विषय/इकाई को पढ़ाते समय उससे सम्बन्धित निश्चित लक्ष्य निर्धारित कर लेना चाहिए।

अध्यापक का यह प्रथम कर्त्तव्य है कि वह "विषयवस्तु" और 'योग्यता विकास' के विविध आयामों से संबंधित अनुदेशात्मक उद्देश्यों को भलीभांति समझ ले।

योग्यता विकास के लिये मस्तिष्क को विचारों से आंदोलित करना, उसे सोचने की क्रिया द्वारा झकझोर देना - अनुदेशात्मक उद्देश्य का एक अंग है।

क्रिया - 1

नीचे लिखे उप-वाक्यों (अ,ब,स) के आगे उन दस शब्दों को लिखिए जो आपके मस्तिष्क में वाक्यों के अंग के रूप में आते हों -

(अ) 'चिन्तन' का अर्थ मेरी दृष्टि में.....

उदाहरण स्वरूप 1. निष्कर्ष निकालना है।

2. सामान्यीकरण करना है।

(और पद जोड़िये)

(ब) 'अनुभूति' का अर्थ मेरी दृष्टि में.....

उदाहरण स्वरूप 1. बांटना है।

2. सहानुभूति देना है।

(और पद जोड़िये)

(स) आधुनिक युग में व्यक्ति को रहने के लिये ये मनश्चालक-कुशलतायें आवश्यक हैं -

.....

उदाहरण स्वरूप 1. साइकिल चलाना।

2. चार्ट बनाना।

(और पद जोड़िये)

11.4.2 शैक्षिक उद्देश्य के बौद्धिक योग्यता आयामों का विवेचन

अपनी सूची को पूरा करने के बाद, इसकी तुलना अपने सहकर्मियों की सूची के साथ करें। आपको पता चलेगा कि वे इन अवधारणाओं को किन संदर्भों में समझते हैं। यदि आप उनके विचारों से सहमत हैं , तो उन्हें अपनी सूची में स्थान दें। अब यह प्रयास संक्रियात्मक परिभाषाओं का प्रारूप बन सकेगा जो शैक्षिक व्यवस्था के ऐच्छिक लक्ष्यों और परिणामों को प्राप्त करने में सहायक हो। 'चिन्तन', 'अनुभूति' और कौशल संबंधी पक्षों को लेकर कुछ विषय जैसे

भूगोल, इतिहास, भाषा, विज्ञान, कार्मस आदि विषयवस्तु और सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण किया जा सकता है। आप चाहें तो अपनी सूची को तालिका 11.1 और 11.2 से तुलना कर सकते हैं। ये सूचियाँ भी बी.एस.ब्लूम (1956) के अवधारणा प्रारूप से ली गई है। यह आवश्यक नहीं कि आप इस अवधारणा- प्रारूप का ही अनुसरण करें। इन अवधारणाओं को लेकर बी.एस.ब्लूम तथा अन्य विद्वानों के मध्य मतभेद भी रहा है। अतः आप भी अपना विचार अलग से बना सकते हैं। मूल बात तो यह है कि आपकी सूची, आपके शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होनी चाहिये।

कुछ वर्षों के अनुभवों के पश्चात् आप अपनी सूची की पुनरावृति कर सकते हैं।

तालिका 11.1: शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गिकी के संज्ञानात्मक क्षेत्र में आने वाली प्रमुख श्रेणियाँ (बी.एस.ब्लूम 1956)

संज्ञानात्मक क्षेत्र की प्रमुख श्रेणियों का वर्णनः
1. **ज्ञान** ज्ञान का तात्पर्य है , पढ़ी गई सामग्री को याद रख सकना। इसकी अवधारणा में पढ़ी गई सामग्री को बड़ी मात्रा में विशेष तथ्यों से लेकर सभी सिद्धान्तों को समाहित करते हुये पुनर्स्मरण करने की क्षमता निहित है। कुल मिलाकर आवश्यकता इस बात की है कि पढ़ी गई सामग्री की समस्त सूचनायें बुद्धि पटल पर उतारी जा सकें। ज्ञानात्मक आयाम के सीखने के परिणामों की दृष्टि से 'ज्ञान' सबसे निचले स्तर का प्रतिनिधित्व करता है।
2. **अर्थग्रहण** पठन-सामग्री के अर्थ, को समझ सकने की योग्यता को 'अर्थग्रहण' के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। किसी व्यक्ति में इसकी पहचान इस रूप में देखी जा सकती है कि वह सामग्री के एक स्वरूप से दूसरे स्वरूप में अनुवाद (शब्द या संख्या) अथवा उसकी व्याख्या (विश्लेषण अथवा सारांश के रूप में) करने की योग्यता रखता है। इसी प्रकार वह सामग्री के भावी रूझान अथवा स्वरूप का अनुमान (परिणाम या उसके प्रभाव के भावी कथन द्वारा) करने की क्षमता रखता है। सीखने की यह प्रक्रिया पठन सामग्री को सामान्य रूप से स्मरण रखने से एक स्तर और क्रम में और आगे ले जाती है। एक व्यक्ति में किसी बात को समझने की कितनी क्षमता है - अर्थग्रहण की अवधारणा के द्वारा ही जाना जा सकता है। अर्थग्रहण व्यक्ति में बोध की योग्यता की दृष्टि से निचले स्तर/पहली अवस्था का प्रतिनिधित्व करता है।
3. **अनुप्रयोग** प्रयोग का अर्थ है - पठित-सामग्री को नई तथा मूर्त स्थूल परिस्थितियों में प्रयोग कर सकने की योग्यता रखना। नियम, प्रणालियों, अवधारणाओं, सिद्धान्तों, कानून आदि का परिस्थितियों के अनुसार प्रयोग कर सकने की योग्यता इसमें सम्मलित की जा सकती है। इस स्तर पर बोध की दृष्टि से ग्रहण शक्ति के अन्दर आने वाली समझने की योग्यता के स्तर का विस्तार होता है। अर्थात प्रयोग की स्थिति पर एक ऊँचें स्तर की बोध की योग्यता की आवश्यकता पड़ती है।
4. **विश्लेषण** 'विश्लेषण' का अर्थ पठित-सामग्री को विभिन्न तथ्यों तथा अंगों में विभाजित कर देखने की योग्यता से है। इस क्रिया के द्वारा सामग्री के संघटनात्मक संरचना के स्वरूप को समझा जा सकता है। इसमें पठन सामग्री के अंगों की पहचान, अंग विशेष के आपसी सम्बन्धों का विश्लेषण सम्मलित है। इसके साथ ही संघटनात्मक सिद्धान्तों की पहचान भी इसमें निहित हो जाता है। सीखने की प्रक्रिया में यहाँ पहुँचने तक, 'अर्थग्रहण' और 'प्रयोग' की तुलना में बौद्धिक विकास और अधिक ऊँचें स्तर पर हो जाता है। कारण यहाँ आकर पठन-सामग्री की विषयवस्तु तथा उसके संघटनात्मक स्वरूप दोनों को समझने की आवश्यकता पड़ती है।

5. **संश्लेषण**

'संश्लेषण' - उस क्षमता की ओर इंगित करता है, जिसके अन्दर पठन-सामग्री के विभिन्न अंगों को, नई समग्रता के साथ संयोजित किया जा सके। इसमें विशिष्ट संप्रेषण माध्यम (कथ्य या भाषण) का उत्पादन भी सम्मलित हो सकता है। इसी में एक क्रियाशील योजना (शोध-प्रस्ताव) अथवा अमूर्त सम्बन्धों का समुच्चय (सूचनाओं के वर्गीकरण की पद्धति) आदि भी सम्मिलित है। इस स्तर पर सीखने की प्रक्रिया में रचनात्मक व्यवहार पर बल होता है जिसके अन्दर नए प्रारूप अथवा नई संरचनाएं सम्मलित हैं।

6. **मूल्यांकन**

'मूल्यांकन' पठन-सामग्री की उपयोगिता के परीक्षण करने की क्षमता (वक्तव्य, उपन्यास, कविता, शोध पट आदि) से सम्बन्धित है। यह परीक्षण निश्चित मापदण्डों पर आधारित होना चाहिए। मापदंड का आधार 'आन्तरिक' (सामग्री के संघटनात्मक स्वरूप) अथवा बाह्य (उद्देश्य की प्रासंगिकता) स्तर का हो सकता है। परीक्षण के मापदण्ड के आधारों को लेकर या तो विद्यार्थी स्वयं निर्णय ले सकते हैं, अथवा उन्हें बतला दिया जाना चाहिए कि मापदण्ड के निर्णय का आधार क्या होगा। यहाँ तक आकर ज्ञानात्मक श्रेणी में सीखने के परिणामों का स्तर सर्वोत्तम समझा जाना चाहिये। कारण 'मूल्यांकन' में ऊपर बतलाई गई संज्ञानात्मक क्षेत्र की सभी श्रेणियाँ समाहित रहती है। साथ ही पाठ्य-सामग्री का परीक्षण भी एक निश्चित मापदण्ड पर आधारित होता है। इस प्रकार पाठ्य-सामग्री को लेकर एक विस्तृत और निश्चित श्रेणी को समझने की योग्यता का विकास होता है।

स्रोतः ग्रोनलुण्ड, नारमैन, ई. (1981): मेजरमेन्ट एन्ड इवेल्यूएशन इन टीचिंग, चौथा संस्करण न्यूयार्क, मैक्सीलन, पृ.568.

तालिका 11.2: सामान्य अनुदेशात्मक उद्देश्यों के उदाहरण तथा वर्गिकी के संज्ञानात्मक आयामों के लिये प्रयुक्त क्रियाओं का स्पष्टीकरण

सामान्य अनुदेशात्मक उद्देश्य के दृष्टांत समान्य शब्दावली का ज्ञान विशिष्ट तथ्यों का ज्ञान विधि और प्रक्रिया का ज्ञान मूलभूत अवधारणाओं का ज्ञान सिद्धान्तों का ज्ञान	विशिष्ट अधिगम परिणामों के कथन के लिए कार्यों के उदाहरण परिभाषित करना, वर्णन करना और पहचानना स्तर , सूची के अनुरूप नाम रखना, रूपरेखा, पुर्नरूत्पादन, चुनाव और कथन कहना
तथ्यों तथा सिद्धान्तों का ज्ञान क्रिया सम्बन्धी सामग्री को समझना चार्ट तथा ग्राफ को समझना वाचिक-सामग्री को गणितीय सूत्रों अनूदित करना आधार सामग्री के परिणामों का अनुमान करना प्रणाली तथा प्रक्रिया को न्यायसंगत बनाना	परिवर्तित करना प्रतिरक्षण करना, विभेदीकरण करना अनुमान लगाना, व्याख्या करना, सामान्यीकरण करना निष्कर्ष निकालना, उदाहरण देना,भावानुवाद करना भविष्य कथन करना, पुनर्लेख करना, सारांश निकालना
सिद्धान्तों का नई परिस्थितियों में प्रयोग करना व्यवहारिक परिस्थितियों में सिद्धान्तों का प्रयोग करना गणितशास्त्रीय समस्या का हल निकालना चार्ट और ग्राफ का निर्माण करना पद्धति के सही प्रयोग का प्रदर्शन	परिवर्तन करना, सगणना करना, प्रदर्शन करना आविष्कार करना, काम में लाना परिष्कार करना, परिचालित करना भविष्यकथन करना, तैयार करना, उत्पादित करना, सम्बन्ध स्थापित करना, दिखाना, समाधान करना, प्रयोग करना आदि। सामग्री के भागों को अलग-अलग करना,
अकथित पूर्वानुमानों को जानना। विचार के समय तार्किक भ्रांतियों को पहचानना, तथ्यों और अनुमानों	रेखाचित्र, अन्तर बताना, विवेचन करना, विशिष्टता बतलाना, पहचान करना, उदाहरण

के मध्य भेद करना आधार सामग्री की प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना, किसी कार्य की संघटनात्मक संरचना का विश्लेषण करना (कला, संगीत, लेखन)	देना, निष्कर्ष या अनुमान निकालना, रूपरेखा बनाना, इंगित करना सम्बन्धित करना, चुनाव करना, पृथक करना उप-विभाजन करना।
किसी विषय पर सुसंघटित रूप से लिखना सुसंघटित भाषण देना रचनात्मक लेखन करना (कहानी या कविता) प्रयोग के लिये योजना प्रस्तावित करना, समस्या के हल के लिए विभिन्न क्षेत्र के ज्ञान को संकलित करके योजना बनाना, विषय (या प्रघटना या विचार) के वर्गीकरण के लिए नई पद्धति को सूत्रबद्ध करना	वर्गीकरण करना; संयुक्त करना, संकलित करना, विन्यास करना, निर्माण करना, युक्ति निकालना, रूपरेखा बनाना, व्याख्या करना, निर्माण करना, परिष्कार करना, संगठित करना, योजना बनाना, प्रयोग के लिये योजना प्रस्तावित करना पुनर्व्यवस्थित करना, पुनर्रचना करना सम्बन्धित करना, पुनर्संघटित करना पुनरावृति करना, पुनर्लेखन, सारांश करना, बतलाना, लेखन करना
लिखित सामग्री की संगतता का आंकलन करना आधार सामग्री द्वारा सिद्ध निष्कर्षों के औचित्य का आकलन करना कार्यों के महत्त्व का (कला, संगीत, लेखन) बाहरी मापदंडों से आकलन करना	मूल्यांकन करना, तुलना करना, निष्कर्ष निकालना, वैषय करना, आलोचना करना, वर्णन करना, विभेदीकरण करना, व्याख्या करना, औचित्य बतलाना, अर्थ समझाना, संबंधित करना, सारांश करना, समर्थन करना

स्रोत - ग्रीनलुण्ड, नारमैन ई. (1981): मेजरमेन्ट एन्ड इवैल्यूएशन इन टीचिंग, चौथा संस्करण, न्यूर्याक मैक्सीलन, पृ.569.

11.4.3 विशिष्टियों/विनिर्देशन की तालिका बनाना

विशेष विद्यार्थी समूह (जैसे कक्षा IX) से सम्बन्धित पाठ्यक्रम को लेकर अपने लक्ष्य/परिणामों का वर्णन कीजिये।

इस विद्यार्थी समूह को आपके द्वारा पढ़ाये जाने वाले विषयों में से किसी एक का चुनाव कर, उसकी एक इकाई या उप-विषय का वर्णन कीजिये। तदुपरान्त नीचे प्रस्तुत निर्देशों के अनुसार उसके लिये शिक्षण की रूपरेखा बनायें.....

इकाई/उप-विषय का शीर्षक .....

विद्यार्थी समूह .....

वर्तमान समय में जिस विद्यार्थी समूह को (IX,X,XI,XII) आप पढ़ा रहें हैं उसके अभिलक्षणों/ विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

तालिका 11.3: शैक्षिक लक्ष्यों का वर्णन: विशिष्टियों की तालिका

विषयवस्तु	योग्यता		लक्ष्य के आयाम	
अध्यापन	चिन्तन	अनुभूति	भावनात्मक	मनश्चालक

कुछ अन्य उप-विषयों के लिये शिक्षण मैट्रिक्स बनाइये। तदुपरान्त उनकी परस्पर तुलना कीजिये। आप देखेंगे कि :

1. भिन्न-भिन्न उप-विषयों के कारण, आप विभिन्न अवधारणओं तथा नियमों के लक्ष्य निर्धारित कर सकेंगे। इससे विद्यार्थियों को भिन्न-भिन्न प्रकार से सोचने, अनुभव करने की प्रक्रिया तथा निपुणताओं में संलग्न कर सकने में भी सहायता मिल सकेगी।

2. विभिन्न विषयों से, उप-विषयों का चुनाव इस बात में भी सहायता कर सकता है कि आप अपने विद्यार्थियों को शैक्षिक उद्देश्यों के समान योग्यता-आयामों में संलग्न करा सके हैं। जैसे -

   - अवधारणा का निर्माण करना
   - निष्कर्ष स्वीकार करने से पूर्व, प्रमाण के अन्तरालों को पहचानना, आदि ।

11.4.4 प्राथमिकताओं को नियत करना

यह सम्भव है कि विद्यार्थियों को, उप-विषय तथा पाठ्यक्रम के माध्यम से भिन्न-भिन्न विषय सम्बन्धी आयाम-लक्ष्यों तथा योग्यता सम्बन्धी आयाम लक्ष्यों को प्राप्त कराया जा सके। एक अध्यापक को इन लक्ष्यों में से अपनी प्राथमिकताओं को निर्धारित करना चाहिए। इस दृष्टि से शिक्षण-कार्यनीति के लिये समय-सीमा, विषय की प्रकृति अथवा दूसरे अन्य तत्व भी विचारणीय होने चाहिए।

एक बार फिर से कक्षा-अध्यापन के लिये बनाई गई रूपरेखा को देखें । जिन विषयों को आप अपने विद्यार्थियों के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं उन्हें किसी प्रकार के चिन्ह से अंकित कर लें। यह भी निश्चय कर लें कि एक निश्चित समय में उस उप-विषय के अध्यापन को समाप्त कर दिया जायेगा।

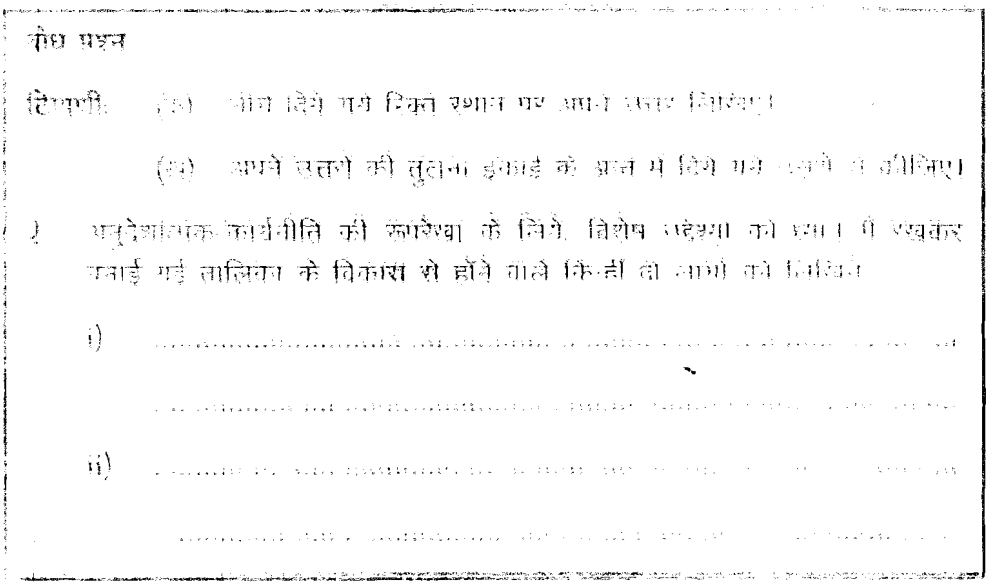
स्वः पश्चात

टिप्पणी: (क) दीजिये गये रिक्त स्थान पर अपना उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों की तुलना इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से कीजिए।

1) अनुदेशात्मक कार्यनीति की रूपरेखा के लिये विशेष उद्देश्यों को ध्यान में रखकर बनाई गई तालिका के विकास से होने वाले किन्हीं दो लाभों को लिखिये।

i) .....

.....

ii) .....

.....

11.4.5 व्यवहारगत रूप में उद्देश्यों का विशेषीकरण

इससे पूर्व की इकाइयों में आप अध्ययन कर चुके हैं कि शिक्षण अथवा अध्यापन का मूल उद्देश्य विद्यार्थियों में सीखने की क्षमता उत्पन्न करना है जिससे उसके सीखने के व्यवहार में गुणात्मक परिवर्तन ओ सके। आप यह भी जानते है कि अनुदेशात्मक व्यवस्था में मूल्यांकन का विशेष महत्त्व है । अध्यापन के मध्य और अन्त में मूल्यांकन करते रहने की आवश्यकता इसलिये पड़ती है कि इससे अध्यापक को पता चलता रहता है कि विद्यार्थी उसके अध्यापन से कितना सीख सकता है। दूसरे शब्दों में, अध्यापक को स्वयं यह पता चल सकता है कि उसके पढ़ाने की प्रक्रिया कितनी सुनिश्चिति रूप से योजनाबद्ध थी और उसके क्रियान्वयन का तरीका कितना प्रभावशाली है।

इस लक्ष्य को ध्यान में रखें तो अनुदेश के उद्देश्य विशिष्ट होने चाहिये। यह स्पष्ट है कि विद्यार्थियों के व्यवहार को लेकर शिक्षण के उद्देश्य किसी स्तर पर भी अस्पष्ट अथवा संदेहात्मक नहीं है। अध्यापन के समय विद्यार्थियों के व्यवहार में दिखाई देने वाले परिवर्तनों का प्रेक्षण किया जा सकता है तथा इन्हें नापा भी जा सकता है।

नीचे कुछ कथन दिये जा रहें हैं। इनमें परस्पर तुलना करते हुए, यह निश्चित कीजिए कि विद्यार्थी के सीखने के व्यवहार के संदर्भ में कौन से कथन, अनुदेश के विशिष्ट उद्देश्यों से सम्बन्धित हैं —

i) विद्यार्थी विद्युत के सिद्धान्तों को समझ सकेंगे।

ii) विद्यार्थी मराठा साम्राज्य की भूमिका का वर्णन कर सकेंगे।

iii) अध्यापक मानचित्र की सहायता से अक्षांश और देशान्तर रेखाओं की व्याख्या करेगा।

iv) विद्यार्थी, वायु में नमी को नापने के लिये उपयुक्त उपकरण का चुनाव करने में समर्थ हो सकेंगे।

आपका उत्तर क्या है।

कथन (iii) स्पष्ट रूप से अनुदेश के परिणाम से सम्बन्धित कथन नहीं है। इसमें "अनुदेशात्मक उद्देश्य" का कोई संकेत नहीं है। यह केवल अध्यापक द्वारा की जाने वाली एक क्रिया का वर्णन करता है। और साथ ही उसकी शिक्षण-विधि का भी।

कथन (i) विद्यार्थी के व्यवहार को इंगित करता है। पर यहाँ "समझना" शब्द का क्या अभिप्राय है ? एक प्रारम्भिक शाला के विद्यार्थी के लिये, विद्युत के सिद्धान्त के समझने का अर्थ होगा, कि वह कमरे में बिजली के बटन को दबाकर बल्ब में प्रकाश होने का अनुभव करता है। आयु में कुछ बड़े विद्यार्थी के लिये इसका अर्थ, उस विद्युत के झटके से हो सकता है, जिसका उसने कभी अनुभव किया हो। 10+2 स्तर का विज्ञान का विद्यार्थी, विद्युत के सिद्धान्त के अर्थ को बिल्कुल अन्य संदर्भों में समझ सकेगा। विद्युत शक्ति किस प्रकार से उत्पादित होती है - उत्पादन की प्रक्रिया क्या होती है ? इंजीनियरिंग का छात्र तो सम्भवतः बिजली कैसे उत्पन्न हो सकती है ? इसके लिये कोई प्रयोग का विचार ही करने लगे। इसीलिये "समझना" शब्द का प्रयोग भ्रामक है, कारण यह कि यह 'समझने' के निश्चित अर्थ को इंगित नहीं करता। इसीलिये अध्यापन/शिक्षण के उद्देश्यों को व्यापक स्तर पर न रखकर, उन्हें कुछ सीमित व विशिष्ट बनाने की आवश्यकता पड़ती है। सुनिश्चितता और स्पष्टता के लिये अपने अध्यापन/शिक्षण उद्देश्य के उक्त संदर्भ को उन क्रियाओं से जोड़ा जाना चाहिये जिससे कि विद्यार्थियों के सीखने और ग्रहण करने के व्यवहार का निरीक्षण किया जा सके, और यह नापा जा सके कि वे कितना सीख रहें है।

'जानना', 'समझना', 'सोचना', 'बोध करना' आदि शब्द उस श्रेणी के हैं जो किसी ऐसी विशेष क्रिया को प्रदर्शित नहीं करते जिसे देखा जा सके। इसलिये इन बौद्धिक प्रक्रियाओं को प्रगट करने के लिये कुछ कार्यबोधक क्रियाओं के प्रयोग की आवश्यकता पड़ती है। जिसके द्वारा विद्यार्थियों में सीखते समय होने वाले ऐच्छिक परिवर्तनों को देखा और मापा जा सके।

उदाहरणः-

i) वर्णन करना, लिखना, परिभाषित करना, अपने शब्दों में सिद्धान्त को लिखना।

ii) सिद्धान्त के उदाहरणों (दिये गए) को पहचानना।

iii) सिद्धान्त के लिये नए उदाहरण / दृष्टान्तों को देना।

iv) सिद्धान्त पर आधारित नई अवधारणाओं को गढ़ना।

v) किसी विशेष आधार को संकेतित करते हुए किन्ही दो उदाहरणों (सकारात्मक और नकारात्मक) अथवा दो अवधारणाओं अथवा दो सिद्धान्तों में अन्तर करना।

vi) दिये गए दो या दो से अधिक सिद्धान्तों के मध्य सम्बन्धों का विवेचन करना।

इसी प्रकार कुछ अन्य कथनों को लीजिए, जिनसे यह स्पष्ट हो कि उनका सम्बन्ध 'समझने' से है।

आइये कुछ दूसरे उदाहरण लें —

कथन - 'वह आलोचनात्मक ढंग से सोच सकेगा' — इसे इस रूप में परिवर्तित किया जा सकता है कि वह —

i) **तथ्य और मत में भेद कर सकेगा।**

ii) **प्रासंगिक और अप्रासंगिक सूचनाओं में भेद कर सकेगा।**

iii) **दिए गये तर्क/कथन में भ्रामक तर्कणा को पहचान सकेगा।**

iv) **दी गई आधार सामग्री की कमियों अथवा अपर्याप्तता की पहचान/खोज अथवा संकेत कर सकेगा।**

v) **दी गई आधार सामग्री से सार्थक निष्कर्ष निकाल सकेगा।**

vi) किसी निष्कर्ष अथवा तर्क में निहित पूर्व धारणाओं को पहचान सकेगा।

निःसन्देह, अध्यापन से सम्बन्धित इन उद्देश्यों को, कक्षा में पढ़ाए जाने वाले विशेष प्रकरण। विषयवस्तु के संदर्भ में ही कहना होगा।

अनुदेशात्मक उद्देश्य कितना विशिष्ट होना चाहिये

यह जानना प्रासंगिक होगा कि अध्यापक के अनुदेश का उद्देश्य कितना विशिष्ट होना चाहिये। अनुदेश के उद्देश्य का इस सीमा को लेकर, उसका परीक्षण दो प्रकार से किया जा सकता है। पहला तरीका तो यह है कि आप स्वयं यह देखें कि क्या आप इतने सक्षम हैं कि आप उन प्रश्नों को बना सकते हैं, जिससे यह आँका जा सके कि आपका विशिष्ट, उद्देश्य अभिव्यक्त होता है अथवा नहीं। इसका अर्थ यह भी होगा कि इन प्रश्नों के गठन के द्वारा उस स्तर व अवस्थाओं का संकेत मिलना चाहिये, जिससे विद्यार्थी के सीखने का व्यवहार भी प्रदर्शित होता हो। विशिष्टता के समुचित स्तर के होने के परीक्षण का एक दूसरा तरीका यह हो सकता है कि जब उसी विषय का एक अन्य विशेषज्ञ अध्यापक उस विषय में परीक्षोपयोगी प्रश्नों को बनाता है, जिनका जटिलता और गूढ़ता का वही स्तर है जिसे आपने भी उस विषय के अध्यापन के लिये निर्धारित किया है।

दूसरे शब्दों में अनुदेशात्मक उद्देश्य इतने विशिष्ट होने चाहिये कि दो विशेषज्ञ, उसमें से एक समान अर्थ निकाल सकें। उसकी समान रूप से वांछनीयता निश्चित कर सकें और उसका समान मूल्यांकन भी कर सकें।

अब आप अपनी विशिष्टियों की तालिका का अनुसरण करते हुए ऐसे पांच अनुदेशात्मक उद्देश्य लिखिये, जिनका प्रेक्षण किया जा सकता हो तथा जिन्हें नापा भी जा सके तथा उनका मूल्यांकन भी हो सके।

उद्देश्यों के विशेषीकरण से पूर्व,अपने लक्ष्य समूह (विद्यार्थी समूह) जिनसे आप लक्ष्यों की प्राप्ति की अपेक्षा करते हैं तथा अनुमानित समय-सीमा का भी निर्धारण कर लेना चाहिए।

अनुदेशात्मक उद्देश्यों, शिक्षा के लक्ष्यों, संत्रात व्यवहारों और अधिगम निष्पत्तियों में अन्तर

इस अध्ययन की इकाई 6 खंड 2 में, अनुदेशात्मक उद्देश्यों , उनकी उपयोगिता और सीमाओं आदि को लेकर विवेचन किया जा चुका है। यहाँ हम अनुदेशात्मक उद्देश्यों, शिक्षा के लक्ष्यों, सत्रांत व्यवहारों और अधिगम निष्पत्तियों में अन्तर समझने का प्रयास करेंगे।

अभी तक हम इन शब्दों का प्रयोग, परस्पर एक-दूसरे के लिये ही करते आए हैं। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि वास्तव में इनमें परस्पर कोई अन्तर भी है ? निश्चय ही इनमें परस्पर अन्तर है। और अब से यह ध्यान देना होगा कि इन शब्दों का प्रयोग उनके ही विशेष संदर्भ में हो। (देखिए चित्र 11.3, शिक्षा व्यवस्था के निर्गत)

शिक्षा के लक्ष्य से तात्पर्य दूरगामी लक्ष्यों से है। वे एक प्रकार से सामान्य एवं सर्वव्यापी होते हैं, जिनका सम्बन्ध मूलतः नागरिकता के विकास, सृजनात्मक चिन्तन के विकास आदि से है। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये समय-सीमा आदि का विशेष कठोरता से पालन नहीं होता।

इसकी तुलना में अनुदेशात्मक उद्देश्य से तात्पर्य, उन उद्देश्यों से है, जिन्हें शिक्षण के लिए एक अध्यापक अपने समक्ष लेकर चलता है। अध्यापक को इन उद्देश्यों को एक निश्चित समय-सीमा में प्राप्त करना होता है। अनुदेशात्मक उद्देश्य पूर्णतः स्पष्ट होते हैं उनमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं होता। इसीलिये उनकी व्याख्या प्रेक्षण करने योग्य तथा मूल्यांकन किए जा सकने के अर्थों में की जाती है। उदाहरण के लिये कक्षा दसवीं के विद्यार्थी समूह को 'नागरिकता' का उप-विषय पढ़ाते समय अनूदेशात्मक उद्देश्य इस प्रकार स्पष्ट और निश्चित किया जा सकता हैं —

"विद्यार्थी भारत के संविधान द्वारा स्वीकृत नागरिकों के अधिकारों का वर्णन कर सकेगें।"

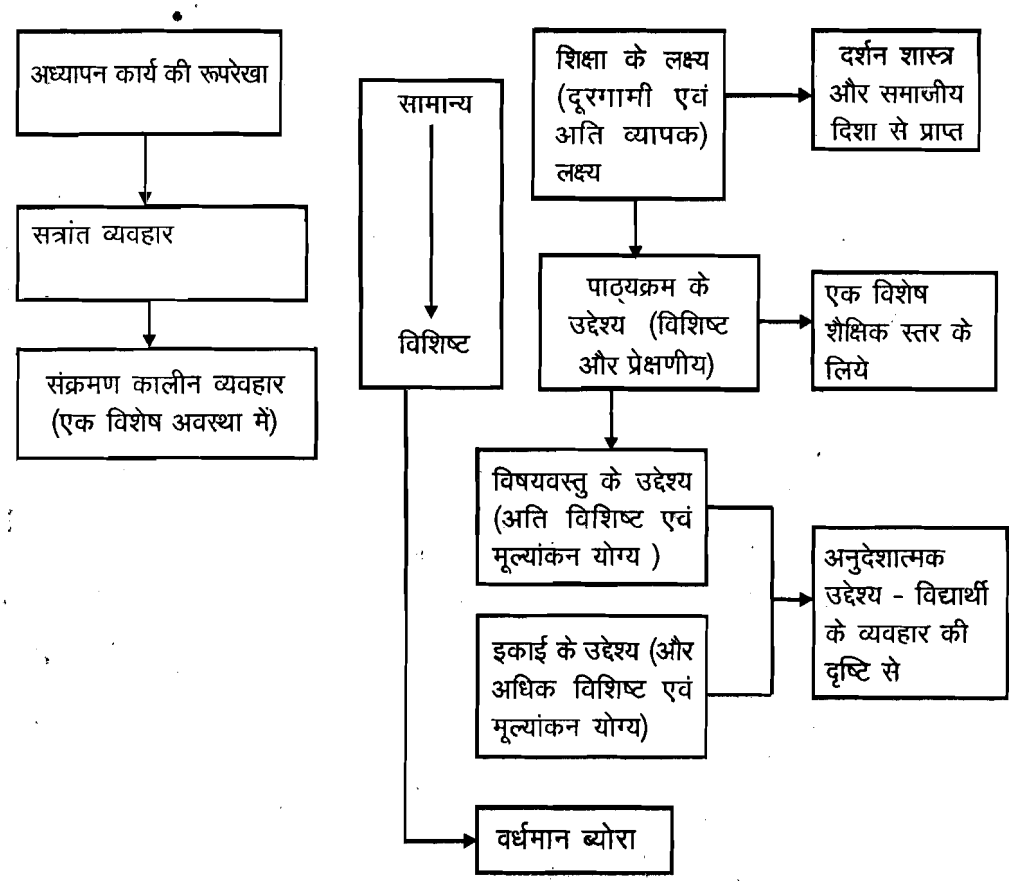

चित्र 11.3: शिक्षा व्यवस्था के निर्गत

अनुदेशात्मक उद्देश्य और सत्रांत व्यवहार

विद्यार्थी के अन्तिम/ सत्रांत व्यवहारों को, शिक्षा के लक्ष्यों से भिन्न समझना चाहिए। क्योंकि शिक्षा के उद्देश्य एक स्तर पर पूरी तरह स्पष्ट नहीं होते। उनका स्वरूप व्यापक होता है। दूसरी ओर विद्यार्थी के अन्तिम सत्रांत/ व्यवहार निश्चित और स्पष्ट होते हैं।

अनुदेश के समय विद्यार्थी में प्रकट होने वाले संत्रात व्यवहारों का प्रेक्षण और मूल्यांकन दोनों किया जा सकता है। प्रायः उन्हें विद्यार्थी कार्य विश्लेषण से प्राप्त किया जा सकता है। अथवा इसके लिये कभी-कभी एक विशिष्ट प्रकार का कार्य सम्पन्न करने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के कथनों में कई बार वे कार्य और व्यवहार भी निहित रहते हैं जिन्हें हम प्रायः विशेष रूप से कक्षा में नहीं करते या पढ़ाते। कारण ऐसा मान लिया जाता है कि विद्यार्थी ने उनकें लिये दिये गये अनुदेशों से पूर्व ही उन्हें सीख रखा है। दूसरी ओर सीखने के स्तर पर कुछ ऐसे

भी व्यवहार होते है जो विद्यार्थियों में बहुत अभ्यास के पश्चात् दिखलाई पड़ते हैं और जिन्हें अनुदेश की अवधि में पूरा नहीं किया जा सकता।

उदाहरण के लिये 'टंकण' के कार्य को सीखते समय एक विद्यार्थी से अपेक्षा की जाती है कि वह प्रति मिनट साठ शब्द का ठंकन कर सके। निश्चय ही विद्यार्थी इस गति अथवा स्तर का सीखना एक विशेष विधि द्वारा, और फिर लगातार अभ्यास के पश्चात् ही प्राप्त कर सकता है। किन्तु अनुदेश उद्देश्यों में इसके लिये एक सप्ताह की अवधि में विद्यार्थी से अपेक्षा की जाती है कि वह केवल उंगलियों की सहायता से, बिना अक्षर-बोर्ड को देखे टाइप करना सीख जाये। जबकि बोर्ड में दिये गये अनेक वर्णों के लिये विशेष अभ्यास और गति की आवश्यकता होती है। पर टंकन के लिये निश्चित अनुदेशात्मक उद्देश्यों का यह पृथक अंग नही है। उसका उद्देश्य केवल यहाँ तक सीमित है कि विद्यार्थी टंकन के लिये एक विधि में निपुणता प्राप्त कर सके और बाद में जाकर उसी में तीव्र गति का विकास कर सके। इस प्रकार यहाँ पर अनुदेशात्मक लक्ष्य, एक बड़े निर्धारित कार्य का केवल एक अंग मात्र समझा जाना चाहिये। इसमें विद्यार्थी के वे सभी व्यवहार व प्रयास सम्मलित नहीं, जो उसे टंकन कार्य की निपुणता की प्राप्ति के लिये सीखने होते हैं।

अनुदेशात्मक उद्देश्य और अधिगम निष्पत्तियां:- ये दोनों शब्द पयार्यवाची हैं। यद्यपि अवधारणा की दृष्टि से, निजी प्रयोग में एक दूसरे से भिन्न भी हैं।

अनुदेशात्मक उद्देश्य से इस प्रकार का बोध होता है कि विद्यार्थी से पृथक कोई बाह्य सत्ता है, जो अनुदेशात्मक प्रक्रिया की योजना बनाती है , तथा उसके अन्तिम परिणामों का विश्लेषण भी वही बाह्य सत्ता करती है।

'अधिगम निष्पत्तियों' की अवधारणा में यह आवश्यक नहीं कि उसमें उद्देश्यपूर्ण ढंग से बनाई गई अनुदेशात्मक योजना भी सम्मलित हो। कारण विद्यार्थी में अधिगम निष्पत्तियों अनुदेश - योजना के कारण भी हो सकते हैं और नहीं भी। ये निष्पत्तियां अन्य कारणों से भी हो सकते हैं जिनका ज्ञान, स्वयं विद्यार्थी अथवा बाह्य-सत्ता अथवा उसके शिक्षक को भी हो सकता है और अनेक बार नहीं भी हो सकता।

बोध प्रश्न

टिप्पणी: (क) दिये गये प्रश्नों के विभिन्न विकल्पों में से सबसे उपयुक्त उत्तर पर (✓) का निशान लगाइए

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

3. नीचे बहुविकल्पी प्रकार के प्रश्न दिए जा रहे है —

i) अनुदेशात्मक कार्यनीति बनाते समय हमें स्पष्ट होना चाहिए

अ) शिक्षण कार्यक्रम के अन्त में विधार्थी से किस बात की अपेक्षा की जाती है ?

ब) विद्यार्थी का पूर्वज्ञान क्या है और वह क्या कर सकने में समर्थ है ?

स) एक वरिष्ठ अध्यापक किस प्रकार की शैक्षिक प्रणाली का प्रयोग करेगा

i) (अ) तथा (ब) दोनों का

ii) केवल (अ) का

iii) केवल (स) का

iv) (अ) और (स) दोनों का

ii) अनुदेशात्मक उद्देश्य और शिक्षा के लक्ष्य में क्या अन्तर है:

अ) शिक्षा का लक्ष्य प्रायः बहुत व्यापक होता है, अतः व्यावहारिक नहीं है।

ब) अनुदेशात्मक उद्देश्य बहुत सीमित होते हैं अतः अभीष्ट नहीं है।

स) अनुदेशात्मक उद्देश्यों का प्रेक्षण और मूल्यांकन किया जा सकता है।

द) दोनों में कोई अन्तर नहीं है।

iii) अनुदेशात्मक कार्यनीति बनाते समय, लिए जाने वाला प्रमुख निर्णय है:

अ) विद्यार्थी के प्रवेश्य व्यवहार का निर्धारण।

ब) विद्यार्थी के प्रवेश्य व्यवहार के लिये उपयुक्त शिक्षण विधि का चुनाव और अनुदेशात्मक उद्देश्यों का निर्धारण।

स) सीमित समय और धनराशि के अन्दर अनुदेशात्मक उद्देश्यों का क्रियान्वयन ।

iv) नीचे कुछ क्रियाओं की सूची दी जा रही है। इनमें से उन क्रियाओं को चुनिए जो अनुदेशात्मक उद्देश्यों के व्यावहारिक पक्ष के लिये विशिष्ट लगती हों

1. भविष्यकथन करना	2. परिष्कार करना
3. संकलित करना	4. सोचना
5. संश्लेषण करना	6. अन्तर करना
7. मूल्यांकन करना	8. संगणना करना
9. समझना	10. विश्लेषण करना
11 व्याख्या करना	

11.4.6 समय-सीमा का निर्धारण

समय-सीमा के निर्णय को लेकर आपके सामने समस्या आ सकती है। कारण अनुदेशात्मक अध्यापन के कुछ उद्देश्यों की पूर्ति के लिये अधिक समय की आवश्यकता पड़ती है और कुछ के लिये बहुत कम समय लगता है। उदाहरण के लिये यदि आप विद्यार्थी समूह को यह बतलाना चाहते है कि किस प्रकार कुछ अंग्रेज भारत में आये, और फिर किस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी का निर्माण हुआ अन्त में किस प्रकार वे भारत के विभिन्न भागों में विजय प्राप्त करके शासन करने लगे — इन तथ्यों को समझने के लिये एक या दो घन्टों का समय लग सकता है। किन्तु यदि आप यह चाहते हैं कि आपके विद्यार्थी यह जान सकें कि औपनिवेशीकरण के विस्तार में अंग्रेजों की इस व्यापारिक नीति का महत्त्व क्या है और उसे यूरोप के औद्योगिकरण के काल से जोड़कर देखना चाहें — तो इसके लिये अधिक समय की आवश्यकता पड़ेगी। हो सकता है, इसके अध्ययन में एक सप्ताह अथवा उससे अधिक समय लग सकता है। इसी प्रकार यदि आप अपने विद्यार्थी समूह को किसी विषय पर चिन्तन करना उसके लिये 'प्रमाण जुटाना' अथवा 'तर्क के अन्तरालों को पहचानना'— आदि सिखाना चाहते हैं, और यदि इसके लिये आपने परियोजना विधि से पढ़ाने का निर्णय किया है तो विषय को कुछ घण्टों में समाप्त नहीं किया जा सकता।

इसके बावजूद इनमें से बहुत से उद्देश्यों में योग्यता आयाम के लक्ष्यों का संचयन होता है। उदाहरण के लिये, विद्यार्थी इन योग्यता आयामों को विभिन्न रूप से असमान प्रकरणों और एक लम्बी अवधि में सीखता रहता है। एक माध्यमिक कक्षा का विद्यार्थी 'सोचने की प्रक्रिया' को केवल इतिहास की कक्षा या भौतिक शास्त्र की कक्षा में सीखना प्रारम्भ नहीं करता। बचपन से ही बालक किसी स्तर पर सोचने की प्रक्रिया करता आया है। वह अनेक स्तरों पर सोचता है

तथा अनुभव करता रहता है। हो सकता है उसने सोचने के विविध प्रकार के ढंग या विद्याएं न सीखी हों । सोचने की विद्याओं का प्रयोग, किसी विषय या उप-विषय को पढ़ने के समय समझने के लिये, करना न सीखा हो। इसीलिए एक अध्यापक का यह कार्य है कि वह अपने शिक्षण के लिये, इस प्रकार की विधि का चुनाव करें, जिससे विद्यार्थी समूह को सोचने की प्रक्रिया का अवसर मिल सके तथा वे सोचने से सम्बन्धित उन नवीन विधियों को भी जान सकें जिससे वे अब तक अवगत नहीं हैं। एक अध्यापक को यह सब तभी स्पष्ट हो सकेगा जब वह एक नही बल्कि विभिन्न शिक्षण-विधियों पर तुलनात्मक ढंग से विचार करे। अध्यापन की समय-सीमा का निर्धारण बहुत कुछ शिक्षण के लिये विधियों के चुनाव पर भी निर्भर है।

14.4.7 सर्वोपयुक्त शिक्षण-विधियों का चुनाव

आपने इस पाठ्यक्रम के खण्ड 2 में, शिक्षण से सम्बन्धित अध्यापक-नियंत्रित और विद्यार्थियों-नियंत्रित, अनेक विधियों का अध्ययन किया है। विद्यार्थी अनुदेशात्मक उद्देश्यों को प्राप्त कर सकें, इसके लिये इनमें से एक या अनेक (संयोजन के रूप में) का प्रयोग किया जा सकता है।

कोई भी शिक्षण-विधि स्वयं में उपयोगी अथवा अनुपयोगी नहीं कही जा सकती। उसकी उपयोगिता को, उद्देश्य के विशेष संदर्भ में ही देखना होगा। तभी किसी 'विधि' के लिये प्रभावशाली अथवा प्रभावहीन होने की बात कह सकते हैं। उदाहरण के लिये "ईस्ट इंडिया कम्पनी का निर्माण कैसे हुआ"— इसे पढ़ाने के लिये यदि अध्यापक 'भाषण विधि' को अपनाता है, तो यह तभी प्रभावशाली हो सकेगी , जब अध्यापक के शिक्षण का उद्देश्य केवल कम्पनी से सम्बन्धित निश्चित सूचनाओं तथा निश्चित आधार सामग्री से विद्यार्थी समूह को अवगत कराना मात्र हो।

किन्तु केवल अध्यापक द्वारा दिए गये भाषण को सुनने मात्र से विद्यार्थी समूह को यह अवसर नहीं मिलता कि वे स्वयं भी कुछ समझ और सोचकर इस प्रकार के ऐतिहासिक घटनाओं के निहितार्थ को समझ सकें। यहाँ तक कि यदि अध्यापक धटनाओं के निहितार्थ की व्याख्या भी करता है, उस स्थिति में भी विद्यार्थियों को केवल अध्यापक को सुनने का ही अवसर मिलता है। हाँ बाद में, उसे उन्हीं तथ्यों को पुनर्उत्पादन न करने का अवसर भले ही मिल जाये। किन्तु इस प्रक्रिया में भी उन्हें सोचने के अभ्यास के लिये कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता। दूसरे शब्दों में शिक्षण के लिये प्रयुक्त भाषण-विधि, विद्यार्थियों द्वारा सूचनाएँ ग्रहण करने की क्षमता के विकास के लिये प्रभावशाली हो सकती है, पर तथ्यों को सोचकर ग्रहण कर सकने की निपुणता का विकास इस विधि द्वारा नहीं किया जा सकता। अध्यापक का भाषण, विद्यार्थियों के लिये उस स्थिति में तो और भी प्रभावहीन हो जाता है, जब वह अर्थपूर्ण सूचनाओं को देने के स्थान पर , भाषण को अमूर्त तथ्यों और असम्बन्धित सामग्री द्वारा प्रस्तुत करता है। इस स्थिति में विद्यार्थी स्वयं सन्देहों से भर उठता है, वह सूचनाओं के मध्य सह-सम्बन्ध स्थापित करने में असफल रहता है।

यदि अध्यापक अपने भाषण के समय विषय से सम्बन्धित फिल्म (स्लाइड) वीडियो आदि का भी प्रयोग करता है, तो उसका अध्यापन, प्रभावपूर्ण हो सकेगा। इसके द्वारा विद्यार्थी समूह की सहभागिता को भी अवसर मिल सकेगा। यह फिर से ध्यान देने की बात है कि यदि अध्यापक केवल असम्बन्धित सामग्री के द्वारा अथवा एक अर्थहीन भाषण से, महत्त्वपूर्ण तथ्यों को पढ़ाने का प्रयास करता है, तो उसकी शिक्षण की यह विधि अकुशल ही नहीं, प्रभावहीन भी सिद्ध होगी।

विधि और माध्यम :- अध्यापन के समय विधि और माध्यम के महत्त्वपूर्ण अन्तर को जानना भी आवश्यक है। 'माध्यम' संदेश को पहुँचाने का साधन है। एक अध्यापक अपने संदेश को (अथवा संदेश की श्रृंखलाओं को) अपनी आवाज (जिसे हम भाषण कहते हैं) में टेप रिकार्डर, दृश्य चार्ट , फिल्म आदि के द्वारा विद्यार्थियों तक पहुँचा सकता है। यद्यपि 'शिक्षण विधि स्वयं में माध्यम' से कहीं अधिक है। "विधि' के संदर्भ में अनेक अन्य बातें भी सम्मलित हैं — जैसे अध्यापक ने अपने संदेश को किस प्रकार संगठित किया है, उसका अनुक्रम क्या है, संदेश के

विविध खण्डों को किस प्रकार एक सूत्र में बाँधा गया है आदि। इसी प्रकार, अध्यापन के समय किन माध्यमों का सहयोग लिया गया है, जिससे विद्यार्थी अध्यापक के संदेश को, प्रभावशाली ढंग से ग्रहण कर रहा है, और उसे समझ रहा है। ये सभी बातें विधि के लिये आवश्यक और महत्त्वपूर्ण हैं।

उदाहरण के लिये 'सामूहिक विचार विमर्ष' द्वारा पढ़ाने की विधि में सम्प्रेषण के लिये एक से अधिक माध्यम, जैसे, बोलना, चेहरे की भावाभिव्यक्ति, चेष्टा या अंग संचालन आदि सम्मलित हैं। यह विधि, भाषण विधि से इसलिये भी भिन्न है कि भाषण में (प्रश्नोत्तर अंश से वंचित), विधि पर सारा नियंत्रण अध्यापक का होता है। जबकि 'विचार विमर्श की विधि' अध्यापक द्वारा पूरी तरह से नियंत्रित नहीं होती है। केवल कुछ सीमा तक अध्यापक या समूह का नेता विचार विमर्ष् की दिशा को नियंत्रित कर सकता है।

ऐसी शिक्षण-विधियों का उपयुक्त माध्यमों के साथ प्रयोग करने के लिये, एक अध्यापक को विशिष्ट कौशल और अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है।

इसीलिये अध्यापक को इन विषयों से सम्बन्धित उपयोगी पुस्तकें भी पढ़नी चाहिये। इस खण्ड के अन्त में इस विषय से सम्बन्धित उपयोगी पुस्तकों की एक सूची दी जा रही है। इसके साथ ही अध्यापक अपने किसी स्थानीय अध्ययन केन्द्र से सम्बन्ध स्थापित करके विषय पर अन्य उपयोगी अनुदेशात्मक सामग्री से अवगत हो सकते हैं।

तीसरा महत्त्वपूर्ण बिन्दु जिसे एक अध्यापक को हमेशा याद रखना होगा, यह है कि उसे अपने विशिष्ट शैक्षिक/अनुदेशात्मक उद्देश्यों को विद्यार्थी तक पहुँचाने के लिये हमेशा एक से अधिक विधियों की आवश्यकता पड़ती है। किसी एक विधि पर निर्भर रह कर वह अपने संदेश को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत नहीं कर सकता। उसे यह भी याद रखना चाहिये कि अनुदेश के उद्देश्य जैसे-जैसे जटिल होते जाते हैं, उसके लिये बोधगम्यता की आवश्यकता बढ़ती जाती है और तब वहाँ एक से अधिक अनेक विधियों (और माध्यमों) के संयोजन नितांत महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं।

उदाहरण के लिये कक्षा में इतिहास को पढ़ाना केवल तथ्यों को याद करवाने का अभ्यास मात्र नहीं होना चाहिये। अर्थात इसका उद्देश्य केवल विद्यार्थियों को किसी राजा की जन्म मृत्यु, विजय अथवा पराजय की तिथियों को याद कराना मात्र नहीं है। अध्यापक अपनी शिक्षण विधि में फिल्म, समूह-विवेचन, ऐतिहासिक स्थलों के भ्रमण आदि को सम्मलित करके अपने अध्यापन को अधिक प्रभावशाली बना सकता है। वस्तुतः ये सभी विधियाँ एक दूसरे की पूरक है। केवल आवश्यकता इस बात की है कि उनके संयोजन से पहले, अध्यापक को अपने अनुदेशन लक्ष्यों का विश्लेषण विषय वस्तु के संदर्भ, प्रक्रिया और योग्यता आयामों को लेकर, भली प्रकार से कर लेना चाहिये।

वैकल्पिक कार्य नीतियाँ : चौथी महत्त्वपूर्ण बात जो अध्यापक को ध्यान में रखनी होगी, वह है कार्यनीति को बनाने और उनके प्रयोग के समय अनेक सम्भावनाओं के घटित हो सकने की आशंका हो सकती है। अतः किसी समस्या से निपटने के लिये अध्यापक को वैकल्पिक कार्यनीति की रूपरेखा भी तैयार करनी चाहिये। कोई भी अध्यापक एक माध्यम पर निर्भर नहीं रह सकता। उदाहरण के लिये, उसने अपनी शिक्षण विधि में माध्यम के रूप में किसी 'फिल्म' को चुना है और पढ़ाते समय बिजली चली जाती है तो उसे पढ़ाना बन्द नहीं करना चाहिये। उसे ध्यान देना होगा कि इस विशेष स्थिति में अपने संदेश को संगठित और जारी रखने के लिये एक अन्य शिक्षण-विधि अथवा शिक्षण-विधियों के संयोजन के लिये वह कैसे तत्पर रह सकता है।

अध्यापन के समय अध्यापक का सबसे पहला संदेश क्या होना चाहिये, उसे विद्यार्थियों के सम्मुख, प्रभावपूर्ण ढंग से किस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है। यह इस बात पर निर्भर होगा कि विद्यार्थी-समूह की पृष्ठभूमि क्या है ? अध्यापक को अपनी बनाई गई विधि योजना का कठोरता से पालन करने के स्थान पर, विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि के अनुसार, लचीला बनाने के लिये सदैव तत्पर रहना चाहिये। इसीलिये शिक्षण-विधि के कुछ महत्त्वपूर्ण नियमों का अनुसरण

करना उसकें लिये उपयोगी हो सकेगा। ये नियम है - ज्ञात से अज्ञात की ओर , साधारण से जटिल की ओर, अध्यापक का शिक्षण-प्रबन्धक के रूप में लचीला होना, मौलिक और खुले विचार वाला होना, आदि। इससे वह अध्ययन के समय आवश्यकता पड़ने पर विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर, (किसी विशेष विद्यार्थी के लिये न - भी हो, तो कक्षा में, कम से कम विद्यार्थियों के एक समूह को ध्यान में रखकर) अपनी अनुदेशात्मक कार्य-नीति में परिवर्तन कर सकता है।

बोध प्रश्न

4. नीचे दिये गए कारकों की श्रेणी निर्धारित कीजिये कि वे (अ)बहुत महत्त्वपूर्ण हैं (ब) केवल महत्त्वपूर्ण है अथवा (स) महत्त्वहीन है। चुनी हुई श्रेणी पर गोले का चिन्ह लगाइये:

   i) विद्यार्थियों के पूर्व-अनुभव अ ब स

   ii) अध्यापक के लिए उपलब्ध(अथवा तैयार किया जा सकने वाला) माध्यम अ ब स

   iii) विद्यार्थी के ज्ञानात्मक विकास की अवस्थायें अ ब स

   iv) अध्यापक द्वारा उस विधि/प्रणाली का प्रयोगं जब वह स्वयं स्कूल/कालेज में था। अ ब स

   v) किसी वृद्ध अध्यापक द्वारा अनुमोदित शिक्षण विधि अ ब स

   vi) विदेशी पुस्तक द्वारा अनुमोदित शिक्षण विधि अ ब स

   vii) विषय-वस्तु को पढ़ाए जाने के पीछे छिपा तर्क अ ब स

   viii) आत्मनिर्भर अथवा समूह में अध्ययन की प्रेरणा अ ब स

   ix) पढ़ाई में कमजोर बच्चों के लिए उपचारात्मक प्रशिक्षण के कार्यक्रमों की बारंबारता अ ब स

   x) अध्यापक द्वारा पहले से प्रयोग (पूर्व कक्षाओं में) की गई शिक्षण विधि अ ब स

   xi) सीखने के आवश्यक अनुभवों के लिये प्रासंगिक माध्यम अ ब स

1.5 सर्वोपयुक्त अनुदेशात्मक कार्य-नीति का निर्धारण

अनुदेशात्मक कार्य-नीतियों के विकल्पों में से किसका प्रयोग किया जाये - अध्यापक द्वारा प्रायः यह प्रश्न पूछा जाता है।

वस्तुतः इस प्रश्न का उत्तर इन बातों पर निर्भर करेगाः-

i) विद्यार्थियों की आवश्यकतायें क्या हैं ? एक प्रभावशाली कार्यनीति के निर्धारण के लिये इसे ध्यान में रखना होगा।

ii) कार्यनीति के लिये उपयुक्त माध्यम तथा अन्य सामग्री की उपलब्धि की सुविधायें क्या हैं? साथ ही उन पर लगने वाली धन-राशि तथा समय की कितनी आवश्यकता पड़ सकती है। कुल मिलाकर ये सब बातें वैकल्पिक कार्यनीति के पैकेज़ (Package) की कुशलता पर प्रभाव डालती हैं।

यहाँ एक सावधानी की आवश्यकता है। अनेक अध्यापक जीवन के विभिन्न व्यवधानों, दिन प्रति दिन की कठिनाइयों और कष्टों के कारण, प्रायः नई स्थिति अथवा प्रयास को अपनाने में उत्साह प्रकट नहीं करते। वे तत्परता के साथ उन्हें अपनाते नहीं। भले ही वे इस बात को अच्छी तरह समझते है कि लगातार एक ही विधि, या वर्षों से चली आ रही पुरानी शिक्षण विधि के द्वारा अपेक्षित परिभाषाओं को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकते। इसका एक कारण यह भी है कि पुरानी शिक्षण विधियों में एक प्रकार से अभ्यस्त हो जाने के कारण भी अध्यापक उसे छोड़ना नहीं चाहता। उसके प्रति एक स्वीकृति की अवधारणा इसलिये भी बन चुकी होती है क्योंकि उन्हीं विधियों के माध्यम से स्वयं उसके अध्यापकों ने भी उसे पढ़ाया था।

वस्तुतः अध्यापक को समय और विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुसार अपने अनुदेश में नयी कार्यनीतियों को अपनाते रहना चाहिये।

यहाँ अध्यापक स्वयं अपने से यह प्रश्न पूछ सकते हैं कि अनुदेश के लिये वर्षों से चली आने वाली पुरानी विधियाँ क्या निश्चय ही प्रभावशाली हैं ? हो सकता है कि कुछ उद्देश्यों की पूर्ति के लिये तो वे प्रभावशाली हों, पर दूसरे उद्देश्यों के संदर्भ में, जिन्हें हम आज महत्त्वपूर्ण समझते हैं, उतनी प्रभावशाली न हों। यह भी हो सकता है कि उसमें अन्य और विधियों को जोड़कर उसे प्रभावशाली बनाया जा सके। उदाहरण के लिये अनुदेश के लिये वर्षो से चली आने वाली भाषण विधि महत्त्वपूर्ण होकर भी वर्तमान संदर्भों में तभी प्रभावशाली हो सकेगी, जब उसे' सामूहिक विचार - विमर्ष से संयुक्त कर दिया जाए। इसी प्रकार फिल्म को दिखाकर 'प्रश्नोत्तर' की सहायता से संप्रेषण को प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

दूसरे शब्दों में अनेक प्रकार के प्रयोग करके, अध्यापक एक कुशल और प्रभावशाली अनुदेश कार्यनीति का निर्माण कर सकता है। इस प्रकार किसी प्रभावशाली कार्यनीति का निर्णय प्रयोग के समय विद्यार्थियों की अनुभूत आवश्यकताओं, समस्याओं और अध्यापन परिणामों के लिये एकत्रित आधार-सामग्री पर निर्भर करेगा।

इसीलिये अध्यापक को अनुदेश-कार्यनीति को प्रभावशाली बनाने के सम्बन्ध में आधार सामग्री को एकत्रित करने का कोई न कोई तरीका अवश्य बनाना होगा। उसे केवल अपने मत, विचार, अनुभव अथवा परम्परा पर ही निर्भर नहीं रहना चाहिये।

11.5.1 अनुभव शंकु

अनुदेश के समय कौन-सी विधि अथवा विधियों का संयोजन सबसे अधिक प्रभावशाली हो सकेगा — इस समस्या का कोई सरल निदान नहीं है। पर कुछ ऐसी रूपरेखाऐं हैं, जिनके प्रयोग के द्वारा इस सम्बन्ध में परीक्षण कर समस्या का समाधान खोजा जा सकता है।

प्रसिद्ध मीडिया विशेषज्ञ और संप्रेषण के सिद्धान्तों के निर्माता ई. डेल ने इस सम्बन्ध में अनुभव शंकु (देखिये चित्र 11.4) की संरचना की है। शिक्षण-विधियों/अनुदेशात्मक कार्यनीति को बनाने की दृष्टि से उनके सुझाव निश्चय ही महत्त्वपूर्ण हैं। उनके अनुसार कार्यनीति की रूपरेखा बनाते समय उसके मापदण्ड को लेकर, एक निचले स्तर तक भी जाया जा सकता है - यदि आप यह आवश्यक समझते हैं कि उस स्तर के द्वारा आप अपने विद्यार्थियों में सीखने की प्रक्रिया की सुदृढ़ एवं सुनिश्चित नींव रख सकते है। दूसरी ओर आपके विद्यार्थी अधिगम के श्रेष्ठ स्तर को प्राप्त कर सकें, इसके लिये शिक्षण के माप-दण्डों को लेकर, जितना ऊपर जा सकते हैं, जाना चाहिये।

12. शाब्दिक प्रतीक
11. दृश्यात्मक प्रतीक (संकेत,सामग्री, आकृति)
10. रेडियों और रिकार्डिंग
9. मूक-चित्र
8. चल-चित्र

7. शैक्षिक- दूरदर्शन
6. निदर्शनीय-वस्तु
5. शैक्षिक-पर्यटन
4. निदर्शन
3. नाटकी-करण

   (अनुभव, अभिनय कठपुतली, और भूमिका-अभिनय)
2. प्रकल्पित अनुभव,

   प्रारूप अनुकरण
1. प्रत्यक्ष उद्देश्यपूर्ण अनुभव

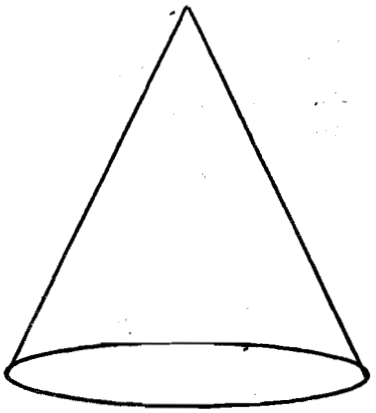

चित्र 11.4: अनुभव का शंकु

डेल के अनुसार सीखने की प्रक्रिया और अधिक प्रभावशाली हो सकती है यदि विद्यार्थी को संकल्पनाओं का स्पष्टीकरण केवल अमूर्त शब्दों से युक्त मौखिक प्रतीको, से ही न कराया जाए। संकल्पनाओं के स्पष्टीकरण के लिये जो उद्देश्य की दृष्टि से प्रासंगिक अनुभवों को माध्यम बनाया जाए तो सीखने की प्रक्रिया अधिक प्रभावशाली हो सकती है। उदाहरण के लिये विद्यार्थी के लिये भौतिकशास्त्र की संकल्पनाएँ, प्रभावशाली रूप से स्पष्ट हों, इसे केवल अध्यापक का भाषण सुनकर, अथवा किताब पढ़कर नहीं समझा जा सकता। संकल्पनाओं को प्रभावशाली, ढंग से समझने के लिये अध्यापक को प्रयोगशाला में सम्बन्धित परीक्षण भी करवाने होंगे। इस प्रकार से सीखते हुये संकल्पनाओं को दूसरी संकल्पनाओं से जोड़कर एक विस्तृत फैलाव और वास्तविकताओं के साथ देखा जाना चाहिए। विद्यार्थी का संकल्पना सम्बन्धी ज्ञान अधिक दीर्घगामी और सुदृढ़ होगा। अनुभवों से सीखा हुआ अध्ययन,निश्चय ही प्रभावशाली होता है। प्रयोगशाला के अनुभव के स्थान पर (मापदण्ड के ऊपरी स्तर पर अधिक कुशल पर कम प्रभावशाली) अथवा किसी प्रदर्शन का प्रयोग भी किया जा सकता है।

अध्यापन के समय मौखिक प्रतीकों का प्रयोग करते समय इस बात की बराबर सावधानी रखनी होगी कि प्रयुक्त प्रतीक और शब्द परस्पर सम्बन्धित हों। साथ ही वे विद्यार्थियों के भूत और वर्तमान के अनुभवों से भी सम्बन्ध रखते हों। दूसरे शब्दों में अनुदेश का संदेश अमूर्त न होकर, विद्यार्थी के लिये अर्थपूर्ण होना चाहिये। ध्यान रहे जो संदेश अध्यापक के लिये अर्थपूर्ण लगता है, वह विद्यार्थी के लिये अर्थपूर्ण हो भी सकता है और नही भी । अतः संदेश का अर्थपूर्ण होना विद्यार्थी की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण है।

11.5.2 संप्रेषण प्रणाली

संप्रेषण व्यवस्था के घटक क्या है ?

- प्रेषक जो संदेश भेजता है (अध्यापक या विद्यार्थी होगा)
- प्राप्तकर्त्ता/ग्रहणकर्त्ता जो संदेश ग्रहण करता है
- संप्रेषक (ट्रांसमीटर) या चैनल, जिसके द्वारा संदेश भेजा जाता है
- वातावरण के अन्य तत्व जैसे दूसरे सहभागी, कक्षा का वातावरण, जो संप्रेषण को गतिशील भी रख सकता है, अथवा अवरूद्ध भी कर सकता है। क्या विद्यार्थी संदेश को ठीक उसी प्रकार ग्रहण करता है जिस रूप में अध्यापक उसे भेजता है अथवा यह विकृत हो जाता है, यदि ऐसा है तो क्यों ?

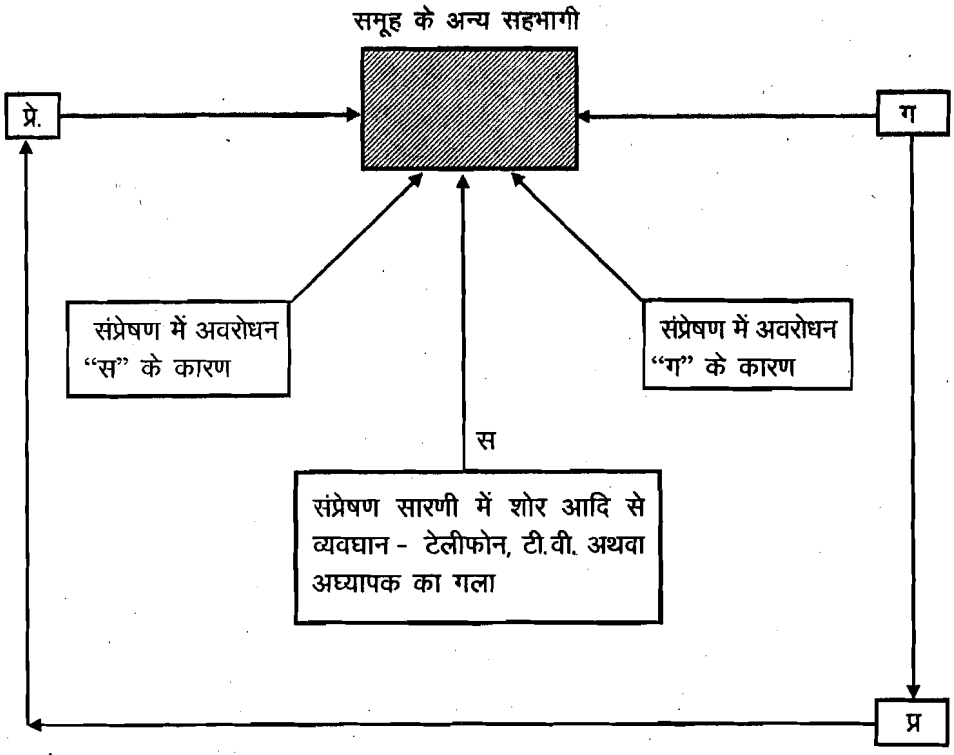

प्रे. - प्रेषक
ग - ग्रहणकर्त्ता
स - संदेश
प्र - प्रतिपुष्टि

चित्र 11.5: संप्रेषण प्रणाली

क्या आपने संदेश प्रसारण का कोई खेल खेला है। एक खेल में एक बच्चा, दूसरे बच्चे के कान में संदेश देता है। दूसरा वही संदेश तीसरे को पहुँचाता है। और तीसरा चौथे को। इस प्रकार यह क्रम चलता रहता है। ऐसा क्यों होता है कि इस क्रम की श्रृंखला के आखिरी दसवें विद्यार्थी के कानो में पहुँचने तक, उसे बिल्कुल विकृत संदेश मिलता है ? ऐसा अक्समात नहीं हो जाता। यह इसलिये होता है कि संदेश के यहाँ पहुँचने तक, मध्य में अनेक विकृतियाँ आ जाती है। प्रश्न उठता है, आखिर ये विकृतियाँ क्यों आती है ? इसके कुछ कारण हैं —

i) स्वयं प्रेषक — जो संदेश उसके मस्तिष्क में है, उसे प्रस्तुत करने के लिये उसने उचित शब्दों का अथवा शारीरिक संकेतों का प्रयोग न किया हो

ii) ग्रहणकर्त्ता — हो सकता हो वह कोई दिवास्वपन या विचारों में खोया हो। इस कारण उसने संदेश को पूरी तरह नहीं सुना और अपने तीसरे साथी को बिल्कुल भिन्न संदेश दे दिया हो

iii) सारणी (चैनल) संप्रेषक (ट्रांसमीटर) तथा संदेश भेजने या ग्रहण करने वाले के आस-पास का वातावरण, जैसे कहीं रेडियो बज रहा था उसकी तेज आवाज के कारण संदेश की समझने में त्रुटियाँ हुई हो।

एक अध्यापक अनुदेशात्मक कार्यनीति की जो भी रूपरेखा तैयार करें, विकृतियाँ पूरी तरह समाप्त नहीं की जा सकती। फिर भी ये विकृतियाँ कम से कम हों ऐसा प्रयास होना चाहिए।

संप्रेषण सिद्धान्त प्रतिपुष्टि पर अत्यधिक बल देता है। इस प्रक्रिया में स्वयं ग्रहणकर्त्ता प्राप्त किये गये संदेश की सूचना अपने प्रेषक को वापस भेजता रहता है। इसका उद्देश्य यही है कि संप्रेषण के समय होने वाली त्रुटियों का निराकरण होता रहे और उसे सुधार के रूप में पुष्टि मिलती रहे।

कोई भी अनुदेशात्मक-कार्यनीति, पोषण-प्रक्रिया के आधार पर ही बनानी चाहिये, जिससे उसमें सुधार के द्वारा सही और निश्चित आधार सामग्री एकत्रित की जा सके। जहाँ आवश्यक हो संप्रेषण युक्ति में परिवर्तन भी कर देना चाहिये। आवश्यकतानुसार शिक्षण विधियों में भी परिवर्तन कर देना उचित रहता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी: (क) सही कथनों पर (✓) निशान लगाइये।

(ख) अपने उत्तरों की तुलना इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से कीजिए।

5. निम्नलिखित कथनों में से कौन सा सही हैं -

(क) संप्रेषण सिद्धान्त का व्यावहारिक महत्त्व केवल जनसंचार के लिये है। कक्षा अध्यापन के लिये इसकी कोई प्रासंगिकता नहीं है।

(ख) शोर केवल विद्यार्थी द्वारा किया जाता है।

(ग) अध्यापक का विषय सम्बन्धी अनभिज्ञता के कारण संप्रेषण में विकृति उत्पन्न् हो सकती है।

(घ) संप्रेषण में बाह्य कारणों से उत्पन्न शोर को नियंत्रित नहीं किया जा सकता है।

11.6 अनुदेशात्मक कार्य-नीति का विकास - कुछ प्राचल (पैरामीटर)

अध्यापक किसी भी दृष्टि से अनुदेशात्मक कार्य-नीति का विकास कर सकता है, किन्तु उसका एक क्रमिक आधार होना चाहिये। नीचे कुछ प्रश्नों की सूची दी जा रही हैं। रूपरेखा बनाते समय इन प्रश्नों का उत्तर स्वयं अध्यापक को देना होगा। वह उसी आधार पर अपनी अनुदेशात्मक कार्य-नीति का निर्माण करेगा -

क्या अनुदेशात्मक कार्य-नीति -

- सार्थक मूर्त अनुभवों को प्रदान करती है और विद्यार्थी में अपने संज्ञानात्मक-मानचित्र को बनाने में सहायक है (अमूर्त, संकल्पना मानचित्र, प्रवाह चार्ट आदि)।
- सरल से जटिल की ओर, ज्ञात से अज्ञात अवधारणाओं और उदाहरणों की ओर बढ़ती है।
- प्रभावशाली मनोवैज्ञानिक क्रम का अनुसरण करते है । अथवा परम्परा से चले आने वाले तार्किक क्रमों को कठोरता से प्रतिरूपित करते है? (जैसे पाठ्य-पुस्तकों का आधार क्रम बहुत अधिक प्रभावशाली नहीं हो सकता)
- अन्वेषण अथवा खोजपूर्ण ढंग से सीखने की प्रक्रिया तथा आगमन तर्कों के द्वारा विद्यार्थी में नवीन ज्ञान के विकास को प्रोत्साहित करती है उस समय भी जब निगमन विधि का प्रयोग हो रहा हो ?
- संकल्पनाओं के पहले से बने जाल के अन्दर नये ज्ञान को जोड़ने के लिये, विद्यार्थी को प्रोत्साहित किया गया है ?
- कक्षा में विद्यार्थियों की विभिन्न पृष्टभूमि के पश्चात् भी, क्या सीखने के एक ही क्रम का प्रयोग किया गया है ? अथवा विद्यार्थियों की व्यक्तिगत भिन्नताओं को देखते हुये, अनुदेशात्मक कार्यनीति में पृथक-पृथक कार्यक्रमों की योजना है ?

- क्या अनुदेशात्मक कार्यनीति में विद्यार्थियों के अध्ययन के समय प्रतिपुष्टि को भी स्थान दिया गया है ? जिससे विद्यार्थी को अपनी त्रुटियों में सुधार करने का भी कोई अवसर मिल सके। क्या इसमें समय-समय पर (अध्ययन के समय हीं) मूल्यांकन करने के अंश विद्यमान हैं। अथवा इसमें अन्तिम मूल्यांकन को ही स्थान दिया गया है। जैसे, सत्र के अन्त में होने वाली परीक्षायें या वर्ष के अन्त में होने वाली बाह्य परीक्षायें आदि।

- क्या सीखने की प्रक्रिया पर धीरे धीरे विद्यार्थी के नियंत्रण को अवसर मिलता है ? सीखते समय विद्यार्थी को गति और अवधि पर नियंत्रण रखने का कोई अवसर प्राप्त है जिससे वह अनुदेश को भली प्रकार से सीख सके अथवा सिखाने की प्रक्रिया पूरी तरह अध्यापक द्वारा ही निश्चित और निर्धारित है अथवा पढ़ाने की गति और समय पर उस माध्यम का पूरी तरह नियंत्रण है जिसका अध्यापक पढ़ाते समय प्रयोग कर रंहा है जैसे अध्यापन के 'माध्यम' के रूप में प्रयोग किये जाने वाले दूरदर्शन के कार्यक्रम वी.डी.ओ-टेप के कार्यक्रम से भिन्न हैं। दूरदर्शन के कार्यक्रमों को लेकर विद्यार्थी कब और किस गति से सीखता है, यह सब दूरदर्शन के कार्यक्रमों के निर्माता और प्रसारण एजेन्सी पर निर्भर है। जबकि वी.डी.ओ टेप पर इन बातों के लिये विद्यार्थी का नियंत्रण है।

- क्या अनुदेश के समय प्रतिभागियों को दूसरे प्रतिभागियों के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया करने का अवसर मिलता है। अथवा अनुदेश -कार्यनीति में प्रतिभागी के लिये केवल अध्यापक के साथ ही सीखने के अवसर रखे गये हैं। अथवा अन्य प्रतिभागियों के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया करते हुये, सहभागिता के आधार पर सीखने के अवसर भी हैं।

- क्या केवल पुस्तकों पर आधारित सीखने की परिस्थितियाँ प्रदान की गई हैं अथवा तथ्यों को उसके जीवन के साथ जोड़कर सिखाया जा रहा है।

हर एक (अध्यापक) को यह ध्यान में रखना होगा कि इन सभी बिन्दुओं में परस्पर कोई विरोध नही है। उनमें परस्पर समन्वयन का अटूट सम्बन्ध है। यह नहीं समझा जाना चाहिये कि यदि कार्यनीति में एक बिन्दु को लिया गया है तो फिर दूसरा उसमें समायोजित नहीं हो सकता है। उदाहरण के लिये अधिकतर अनुदेशात्मक कार्यनीतियों में, मूर्त और अमूर्त दोनों प्रकार के अनुभवों का समावेश होता हैं। अनुदेश कार्यनीति निगमन अथवा विश्लेषण और आगमन अथवा खोजपूर्ण सिद्धान्तों, दोनों को ही अपना आधार बनाती है। प्रायः सभी अनुदेशात्मक कार्यनीतियाँ कम या अधिक रूप से मूर्त अथवा अमूर्त खोज अथवा अनुमान पर आधारित सीखने के अनुभवों को प्रेषित करने में सहायक होती है।

हर एक (अध्यापक) को इस श्रृंखला में से उपयुक्त बिन्दुओं को चुनना है। और पुनः कार्यनीति की प्रभावोत्पादकता और कुशलता के संदर्भों में उनकी उपयुक्तता को परखना चाहिये।

11.7 पूर्व-परीक्षण एवं प्रमाणीकरण

कोई भी कार्यनीति भले ही उसे किसी वरिष्ठ अध्यापक अथवा शिक्षा प्रशासक ने ही क्यों न बनाया हो पहली बार में सीधे रूप में ही सर्वाधिक प्रभावशाली नहीं ठहराई जा सकती। प्रत्येक कार्यनीति को सबसे पहले विद्यार्थियों के समूह पर प्रयोग करके देखना पड़ता है कि वह उनके लिये कितनी प्रभावशाली हो सकती है। कार्यनीति का उसकी प्रासंगिकता के लिये प्रदर्शन करना चाहिये कि क्या विद्यार्थियों का समूह उससे उन उद्देश्यों को सीख रहा है जिसके लिये अनुदेशात्मक-कार्यनीति की रूपरेखा तैयार की गई है। इस सम्बन्ध में एक अध्यापक को किस प्रकार से आधार सामग्री को संकलित करना चाहिये, इस सम्बन्ध में कोर्स-ई.एस. 333 शैक्षिक मल्यांकन में, आप पढ़ सकेंगे।

बोध प्रश्न

टिप्पणी: (क) सही कथनों पर (✓) निशान लगाइये।

(ख) अपने उत्तरों की तुलना इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से कीजिए।

5. निम्नलिखित कथनों में से कौन सा सही है -

(क) प्रत्येक कार्य अनुदेशात्मक विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति के लिये, एक विशेष ही का प्रयोग करता है और उसकी विशिष्ट विधियों को रूपरेखा बनाता है।

(ख) अध्यापक की शिक्षण विधि के चुनाव के आधार के लिये अनेक बिन्दुओं में से एक बिन्दु उस विद्यार्थी समूह की विशेषताएँ/ अभिलक्षण भी हैं जिन्हें वह पढ़ाने जा रहा है।

(ग) [illegible] के अनुसार शिक्षण विधि के चुनाव अनुदेश द्वारा पालन करने योग्य है।

(घ) कैरियर, अमर्त आधारों पर नयी शिक्षण विधि प्रौढ़ों के लिये प्रभावशाली और कुशल हो सकती है पर छोटे बच्चों के लिये नहीं।

(ङ) अध्यापक के लिए जो सरल है, वह विद्यार्थी के लिये जटिल हो सकता है, ठीक इसके विपरीत जो विद्यार्थी के लिये सरल है, वह अध्यापक के लिये जटिल हो सकता है।

(च) पढ़ाते समय विषय वस्तु को अलग किया गया है नहीं क्रम सीखने के बाद, कार्य निष्पादन के लिये भी अपनाया जाना चाहिये।

(छ) एक कविता को एक-एक शब्द या (एक-एक पंक्ति के रूप में) याद करना अधिक सुलभ है।

(ज) आधुनिक शिक्षण केवल अनुगमन विधि का प्रयोग करता है।

(झ) अध्यापक को अमुक कार्य अवधि के लिये निर्धारित पाठ्यक्रम को पूरा करना है।

(ञ) अमूर्त सूचनाओं को याद करने के स्थान पर उन्हें समझाने के साथ संज्ञानात्मक कार्यनीति के द्वारा सीखने के लिये प्रयास करना अधिक महत्त्वपूर्ण है।

(ट) एक साथ सीखने की विधि में अधिक समय लगता है, इसलिये यह विधि, एक-दूसरी स्कूल के संदर्भ में अव्यावहारिक है।

(ठ) सभी अधिगम अनुभव खेल आधारित होने चाहिए।

(ड) [illegible] उद्देश्य शिक्षकों को प्रेरित करना है।

(ढ) [illegible] शिक्षण में केन्द्र भूमिका निर्वाह के द्वारा छात्रों को भागीदारी मात्र पाठ्य-पुस्तक की तुलना में बढ़ती है।

(ण) छात्र को अधिगम प्रक्रिया पर अधिक अधिकार देना वर्तमान शिक्षण की विशेषता है।

(त) परंपरागत एवं शिक्षण की एक मात्र पद्धति से बढ़कर है।

11.8 सारांश

इस इकाई का प्रारम्भ अनुदेशात्मक-कार्यनीति की अवधारणा के विवेचन से किया गया। यह बतलाया गया कि अनुदेश की कार्यनीति की संरचना इस प्रकार से की जाये कि जिससे विद्यार्थियों में ऐच्छिक परिवर्तित व्यवहारों तथा अनुदेशात्मक उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। जब भी अध्यापक अपने अनुदेश के लिये कार्यनीति की रचना करे, उसका यह पहला कार्य

होना चाहिये कि उसके सामने उसके अनुदेशात्मक उद्देश्य स्पष्ट और निर्धारित हो। इसके साथ ही उसे, उस पाठ्यक्रम को भी निर्धारित करना होगा, जिसे उसे निश्चित समय में पढ़ाना है। तदुपरान्त अध्यापक को अपनी प्राथमिकताओं और विशिष्टताओं की तालिका बनानी होगी। इसमें विषयवस्तु के क्षेत्र तथा अनुदेशात्मक उद्देश्यों दोनो को स्थान देना होगा। अनुदेशात्मक उद्देश्यों को निर्धारित करते समय यह महत्त्वपूर्ण है कि उन्हें विद्यार्थियों के अन्तिम परिवर्तित व्यवहारों के ही संदर्भ में विशेषीकृत किया जाये। इस संदर्भ में अनुदेशात्मक उद्देश्यों, शैक्षिक लक्ष्यों, अन्तिम-संव्रात व्यवहारों, सीखने के परिणामों में परस्पर भेद को स्पष्ट किया गया है। एक अध्यापक के रूप में आपको समय की सीमा के पक्ष को भी देखना होगा कि इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये कितना समय लगाना चाहिये।

इसके पश्चात् उपयुक्त विधि या विधियों के चुनाव का महत्त्वपूर्ण कार्य आता है। शिक्षण-विधि/विधियों का चुनाव इस प्रकार करना होता है, जिससे अनुदेशात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति तथा निर्धारित पाठ्य-सामग्री को पूरा किया जा सके। अध्यापक अपनी अनुदेशात्मक कार्यनीति की रचना के विकास के लिये, विविध माध्यमों की सहायता ले सकता है।

इसके पश्चात् अनुभव के शंकु तथा संप्रेषण-प्रणाली का विवेचन किया गया है जो अनुदेशात्मक कार्यनीति के दो भिन्न दृष्टिकोणों को स्पष्ट करता हैं।

अन्त में उन विशिष्ट बिन्दुओं का उल्लेख किया गया है जिनका अनुदेशात्मक कार्यनीति का विकास करते समय ध्यान रखना आवश्यक है।

11.9 अभ्यास कार्य

1. किसी स्रोत केन्द्र अथवा स्कूल जहाँ शिक्षा के माध्यम से सम्बन्धित सामग्री की सुविधा हो, वहाँ जाकर ऐसी पाँच पुस्तकें तथा अन्य सामग्री का चयन कीजिये जिनका विभाजन इस प्रकार से किया जा सकता हो :-

   i) समूह सम्बन्धी कुशलताओं को विकसित करने के लिये संरचनात्मक अथवा अर्ध-संरचनात्मक अभ्यास क्रियाऐं।

   ii) वे अभ्यास क्रियाऐं जो अन्वेषण द्वारा सीखने तथा रचनात्मक को प्रोत्साहित करती हो।

   iii) व्यक्तिगत स्तर पर ऐसा परियोजना कार्य (project) जिसे विद्यार्थी सीखने के अनेक तरीकों में से एक तरीके के रूप में अपना सके।

   iv) ऐसी अभ्यास क्रियायें जो प्रभावशाली क्षेत्र से सम्बन्धित गतिविधियों अथवा क्रियाकलापों को प्रोत्साहित करती हों।

2. एक ही विषय के लिये दो अनुदेशात्मक कार्य-नीति की रचना कीजिये। दोनों की परस्पर तुलना करें। इसे विस्तार से समझाइये कि किन विशेष परिस्थितियों के कारण आप पहली कार्य-नीति का प्रयोग न करके दूसरी कार्य-नीति को अपने शिक्षण का आधार बनाते हैं। इस प्रकार क्या आप यह अनुभव करते हैं कि वैकल्पिक कार्य-नीति सभी परिस्थितियों तथा अवस्थाओं के लिये कारगर है।

इन कार्यनीतियों पर, सुविधानुसार अपने सहकर्मियों से विचार-विमर्श कीजिये। केन्द्र में अपने अन्य साथियों के साथ भी इस पर विचार-विमर्श कीजिए। (इस बात पर अवश्य ध्यान रखें कि विद्यार्थियों की संख्या और विद्यालय की सुविधायें एक समान हो तभी दूसरे केन्द्र अर्थवा साथियों आदि से उस पर, विचार-विमर्श उचित प्रकार से हो सकेगा।)

11.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. अनुदेशात्मक कार्यनीति अध्यापक के लिये, यह निश्चय करने में सहायक है कि वे एक निश्चित तरीके से अपने शिक्षण-उद्देश्यों को प्राप्त कर सकेंगे। इस प्रकार वे अपने विद्यार्थियों में सीखने के अन्तिम सत्रांत व्यवहारों को भी प्राप्त कर सकेंगे।

2. किसी भी अनुदेशात्मक - कार्यनीति का मुख्य प्रकाश्य बिन्दु - विद्यार्थियों में सोचने की क्षमता, सीखने के अनुभव और कौशल को पैदा करना है। विद्यार्थियों में इन क्षमताओं और योग्यता का विकास विषयवस्तु या संबंधित सिद्धान्त द्वारा होता है। इनसे सम्बन्धित विशिष्टताओं की तालिका के मैट्रिक्स में प्रस्तुत किया गया है, जिसमें दोनों पहलुओं विषय-वस्तु और योग्यताओं को अर्थ पूर्ण ढ़ंग से रखा गया है। इससे अध्यापक को प्रभावशाली अनुदेशात्मक-कार्यनीति की रचना में सहायता मिल सकेगी।

3. i) अ

   iii) स

   iii) ब

   iv) 1, 2, 3, 6, 8, 11

4. i) अ ii) ब iii) अ iv) स v) स vi) स vii) ब

   viii) अ ix) अ x) ब xi) अ

5. (iii), (iv)

6. 1, 2, 5, 10, 14, 15

11.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Chauhan, S.S. (1985), *Innovations in Teaching-Learing Process*, Delhi : Vikas Publishing House.

Kulkarni, S.S. (1986), *Introduction of Educational Technology*, Bombay: Oxford and IBH Publishing Co.

Pillai, Jaya K. (1985), *Effective Teaching,* Madurai : Publishing Division, Madurai Kamaraj University.

Siddiqui, M.H. and M.S. Khan (1991), *Models of Teaching - Theory and Research*, Delhi : Ashish Publishing House.